मगसिर शुक्ल ९, सोमवार, दिनांक २३-१२-१९७४, श्लोक-६, प्रवचन-१३

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः॥ ६॥

टीका - निर्मल अर्थात् कर्ममलरहित;.... ऐसा ही यह आत्मा निर्मल अर्थात् कर्मरहित है। भगवान ने प्रगट किया है। यह आत्मा वस्तुरूप से ऐसा ही है। आहाहा! समझ में आया? 'जो जाने अरिहन्त को....' आता है न? जो जाने परमात्मा को। अरिहन्त को जाने कहो या परमात्मा को (जाने कहो)। **'सो जाणदि अप्पाणं'** आत्मा ऐसा है, ऐसा अन्दर में निर्णय करे, अनुभव करे। आहाहा! ऐसा आत्मा, आत्मा करे या आत्मा है, ऐसी श्रद्धा करे, परन्तु आत्मा है कैसा? समझ में आया? वह निर्मल है। भगवान परमात्मा को पर्याय में निर्मलता हो गयी है। परन्तु वह निर्मलता आयी कहाँ से? अन्तर में से। वस्तु का स्वरूप तो निर्मल है, कर्म का सम्बन्ध द्रव्य ज्ञायकस्वभाव के साथ निमित्तरूप से (भी नहीं है)।

केवल अर्थात् शरीरादि के सम्बन्धरहित;.... परमात्मा को शरीर का सम्बन्ध नहीं है, इसी प्रकार आत्मा को शरीर के सम्बन्धरहित ही उसका स्वरूप है। शरीरादि की तो उसमें नास्ति है। इसलिए कि उसे—वस्तु को शरीर का सम्बन्ध है, ऐसा तो है नहीं। आहाहा! वस्तु को निरोग रखना, दवा का सीखना। .... ऐसी बातें!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन? खबर है न। पूज्यपादस्वामी.... परन्तु वह तो ऐसा कोई विकल्प आ गया, और कोई ऐसा वैद्यों की उग्रता दवा की बाहर में प्रसिद्ध बहुत हो और उसकी प्रसिद्धि में ऐसा जाननेवाला हो कोई मुनि को सहज ज्ञात हो गया हो, तो उसे बतलावे, वह कोई विशेष नहीं है। बड़े होते हैं न यह वैद्य? पूज्यपादस्वामी... परन्तु यह तो उस जाति का विकल्प और.... द्रव्य में ऐसा दिखाई दे कि यह तो इसके वैद्य की स्थिति से प्रसिद्धि निरोगता करानेवाले यह हैं। ऐसी प्रसिद्धि हुई हो, उसे स्वयं निरोगता होने की दशा बतावे और रोग का उपाय भी अन्दर आ जाये। आहाहा! यह पूज्यपादस्वामी

ने बनाया है। वैद्य शास्त्र बनाया है। परन्तु वह तो प्रपंच ऐसा था इसलिए। ऐसा न जाने और.... लागू कर दे सब जगह। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शरीरादि के सम्बन्धरहित ही आत्मा है। परमात्मा शरीर के सम्बन्ध रहित तो है परन्तु भगवान आत्मा; शरीर तैजस, कार्मण और औदारिक, वैक्रियिक और आहारक वह और भाषा तथा मन के सम्बन्धरहित वस्तु है। समझ में आया? ऐसा कहा है न कि आत्मा अबद्धस्पृष्ट है। इसका अर्थ हुआ अबद्धस्पृष्ट अर्थात् पर के सम्बन्धरहित है। बन्धरहित है अर्थात् सम्बन्धरहित है। आहाहा! चौदहवीं गाथा का आया था न। यह जो जाने, उसने जैनशासन जाना। आहाहा!

भगवान आत्मा राग और कर्म के बन्धरहित है, अबद्धस्पृष्ट है, ऐसा जिसने शुद्धोपयोग में जाना, वह शुद्ध उपयोग, वह जैनशासन है। समझ में आया? बीच में शुभभाव आवे, वह जैनशासन नहीं। वह व्यवहार जैनशासन अर्थात् उपचार है। आहाहा! इसे कठिन बात पड़े, बापू! यह तो जन्म-मरण के रहित की बातें हैं न। यह जन्म-मरणरहित है। वस्तु तो जन्म-मरण रहित है। वस्तु जन्मे और वस्तु मरे, ऐसा है उसमें? उत्पन्न होना और मरना अर्थात् व्यय होना। आहाहा! ऐसा शरीर और मन, वाणी और कर्म के सम्बन्धरहित परमात्मा है तो वह आत्मा ही ऐसा है। अभी। समझ में आया? ऐसी शक्ति अन्दर त्रिकाल धराता है। उन शक्तियों का वर्णन है। आहाहा! दुनिया के साथ वाद-विवाद से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं। लोगों को व्यवहार की बातें अच्छी लगती हैं। और सत्य है निश्चय की, वह उन्हें पकड़ में आती नहीं; इसलिए सूक्ष्म है.... सूक्ष्म है, ऐसा कहकर निकाल डालते हैं।

शरीरादि.... वाणी, मन... रहित है। **सम्बन्धरहित,....** है। अर्थात् कि बन्धरहित है, अर्थात् कि मुक्तस्वरूप है। आहाहा! **'जो पस्सदि अप्पाणं'** अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष और विकाररहित, ऐसा जो भगवान आत्मा उसे जो अन्दर में ज्ञान और श्रद्धा से देखे, माने, उसे यहाँ जैनशासन कहा है। आहाहा! जैनशासन तो यह है। यहाँ जैनशासन पर्याय की बात है, हों! द्रव्य जैनशासन.... पर्याय जैसा वीतरागस्वभाव है, सम्बन्ध बिना का स्वभाव है, अबद्धस्वभाव है अर्थात् कि अबद्ध तो नास्ति से कहा,

परन्तु अस्ति से कहें तो मुक्तस्वरूप है। आहाहा! ऐसी मुक्तस्वरूप वस्तु है, उसका अनुभव करके उसकी प्रतीति करना, उस दशा को जैनशासन कहते हैं। बारह अंग में यह है। पोपटभाई! आहाहा!

यह परमात्मशक्ति का सत्त्व है। बहिरात्मा और अन्तरात्मा तो पर्याय की अपेक्षा से है। और यह प्रगट होता है, वह पर्याय की अपेक्षा से बात चलती है। समझ में आया? परन्तु वह पर्याय में इसरूप हुआ, वह कहाँ से हुआ? आहाहा! उसे यह विश्वास की दृष्टि में पूरा आत्मा ऐसा आया। इससे उसकी पर्याय में मुक्तस्वभाव की दृष्टि होने से, दृष्टि से तो मुक्त है। दृष्टि का विषय मुक्त है। परन्तु मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय, जितना अबद्धस्पृष्ट को जानने से, अनुभव करने से (टला), उतनी पर्याय में मुक्ति आयी। आहाहा! मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा। यहाँ सम्बन्धरहित भाषा है न! आहाहा! सम्बन्ध कहो या बन्ध कहो। चौदहवीं में ऐसा लिया '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' अबद्ध अर्थात् बद्ध नहीं अर्थात् मुक्तस्वरूप है। आहाहा! उसे कोई राग और शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं। राजेन्द्रजी! ऐसी बात है यह। वहाँ दवाखाना में गप्पें मारने जाना और हो जाये। यह मानो हम होशियार हैं। ऐसा होगा? आहाहा!

बापू! तेरी होशियारी तो ज्ञान और आनन्द की होशियारी तुझमें पड़ी है। अरे! अबद्धस्पृष्ट ऐसी मुक्त शक्ति तुझमें पड़ी है। आहाहा! उस शक्ति को सम्हाले, वह होशियार कहलाता है। नवरंगभाई! आहाहा! ऐसी बात। मूल वस्तु को छोड़कर दूसरी सब बातें करे, अणुव्रत और महाव्रत पाले तो वह भी चारित्र कहलाता है। अरे! परन्तु कहाँ आये, बापू! पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह आस्रव है। आस्रव के सम्बन्धरहित भगवान है। आहाहा! समझ में आया? यह तो जिसे हित करना हो, उसकी बातें हैं, भाई! बातें करनी हो और कहीं शास्त्र की व्यवहार की बातों के पक्ष में खड़े रहकर बातें करनी हो, वह नहीं बैठे। आहाहा!

कहते हैं, यह शरीर आदि के सम्बन्धरहित भगवान है। परमेश्वर ऐसी शक्तिवाला तत्त्व ही वह मैं हूँ। **शुद्ध अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म के अभाव के कारण से परमविशुद्धियुक्त;....** देखा! यह शुद्ध के अर्थ में विशुद्धि ली है। बाकी विशुद्धि तो

कषाय की मन्दता को भी होती है, परन्तु यहाँ तो परमविशुद्धि ली है, इसलिए परमात्मा उसे कहते हैं, अत्यन्त आनन्द की दशा जिसे पूर्ण प्रगट हुई, उसे परमात्मा कहते हैं। आहाहा! कोई जगत का कर्ता है, उसने सृष्टि को सर्जित की है, इसलिए वह परमेश्वर है, ऐसा परमेश्वर का स्वरूप नहीं है।

शुद्ध अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म.... पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के भाव के **अभाव के कारण....** परमेश्वर को उनका अभाव हुआ है। इस कारण से **परम विशुद्धिवाले....** हैं। आहाहा! तो यह भगवान आत्मा भी वह है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु से पुण्य और पाप और जड़ कर्म के भाव बिना की यह चीज़ है। जिसमें इस वस्तु का नास्ति भाव है। राग और कर्म का स्वयं का जो अस्तित्व है.... ऐसी महाप्रभु सत्ता, उसके अस्तित्व में राग और कर्म के अस्तित्व का नास्ति भाव है। समझ में आया? मूल चीज़ को जाने बिना और मूल चीज़ को (माने बिना)।

.....(जो इसमें) नहीं, उसका स्पर्श इसे कैसे हो? भगवान आत्मा शरीर, वाणी, कर्म को स्पर्शा नहीं है। परमात्मा को पर्याय में नहीं है, इसके वस्तु स्वभाव में नहीं है। समझ में आया? क्योंकि यह वस्तु ऐसी है। फिर अलिंगग्रहण के छह बोल में कहा है न? कि वस्तु है, वह आत्मा स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। वह वस्तु ऐसी है। वस्तु त्रिकाल ऐसी है कि वह स्व स्वभाव से ज्ञात हो। क्योंकि उसका स्वरूप है, उसकी पर्याय में ज्ञात होता है, ऐसा। परन्तु उसके स्वरूप में विकल्प को और शरीर को स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! उससे यह ज्ञात हो, भाई! यह वस्तु का स्वरूप नहीं। भगवान ने कहा है, वह ऐसा है (और) वह तो वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? विविक्त की व्याख्या की। विविक्त पहले में आया था। शुरुआत के पद में विविक्त (आया था)। विविक्त का अर्थ ही यह है।

आता है न नव वाड में? स्त्री, पुरुष, नपुंसकरहित विविक्त स्थान। नव वाड ब्रह्मचर्य में आता है। उसी प्रकार यह भगवान स्वयं वह परद्रव्य कर्म और शरीर को स्पर्शा नहीं, ऐसा विविक्त है। आहाहा! फिर उसे व्यवहार से होता है, निश्चय और व्यवहार का कर्ता आत्मा, ऐसा नहीं लागू पड़ता। पोपटभाई! वह.... यह सब ऐसा सुनने

का। आहाहा! ....बहिन कहती थीं.... गड़बड़.... यहाँ बात आयी थी। भाग्यशाली। वापस सब सरीखा आ गया है। अरे! यह बात करने की और समझने की है, बापू! बाकी सब धन्धे और पानी.... उस पर को स्पर्शा नहीं और करे किस प्रकार? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! महेन्द्रभाई! यह हीरा को और माणिक को जीव स्पर्शता नहीं। उठावे और परीक्षा करके दे, ...है। आहाहा! देवजीभाई! यह लोग देखो न, भाग्यशाली लोग कहाँ के कहाँ आ गये। आहाहा!

अरे! यह तो परमात्मा के द्वार खोलने की बातें हैं। बन्ध है कि मैं रागवाला हूँ, यह वाला हूँ, वहाँ वह द्वार बन्द है। आहाहा! विविक्त हूँ। परमात्मा विविक्त है। जो जानता अरिहन्त को द्रव्य, गुण और पर्याय को। अरिहन्त की पर्याय विविक्त है, ऐसा जो जाने, वह आत्मा विविक्त है ऐसा जानकर उस आत्मा को अनुभव करे और जाने। आहाहा! परन्तु सब व्यवहार के कथन चरणानुयोग में बहुत आवे। व्रत पालना, यह व्रत ऐसे करना.... ऐसे करना.... ऐसे करना। आहाहा! इसलिए इसे ऐसा हो गया कि यह भी एक आत्मा का आचरण है। अणुव्रत और महाव्रत... यह श्रावक के छह कर्तव्य आते हैं न? गुरुसेवा,....

मुमुक्षु : देवपूजा, गुरुपास्ति स्वाध्याय.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। यह मानो कि उसका स्वरूप होगा यह! वह राग को स्पर्शा ही नहीं। होता है, तथापि उसके अभावस्वरूप है, उसके अभावस्वभावस्वरूप यह आत्मा है। आहाहा!

विविक्त अर्थात् शरीर-कर्मादि.... आदि अर्थात् भाषा आदि। **नहीं स्पर्शित;....** ओहोहो! परमात्मा उसे स्पर्शते नहीं। वैसे भगवान आत्मा वह भी राग को और कर्म को स्पर्शा ही नहीं। '**अबद्धपुट्ठं**'। ओहोहो! दो शब्द है न? '**अबद्धपुट्ठं**'। फिर और चार दूसरे—अनन्य, अविशेष (आदि)। स्पर्शा नहीं। ऐसा कहा—वहाँ क्या नहीं कहा? आहाहा! यह चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति ज्ञानस्वभाव का स्वरूप ही अकेला ज्ञानस्वरूप वह राग को और शरीर को कैसे स्पर्शे? ज्ञान कैसे स्पर्शे? उसे परज्ञेयरूप से परज्ञेयरूप से जानना, वह भी पर है; इसलिए परज्ञेयरूप से ज्ञात होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

वह पर है, वह स्व का जहाँ स्पर्शा बिना की चीज़ हूँ, ऐसा भान हुआ, तब पर का ज्ञान पर के कारण नहीं, परन्तु अपने स्वभाव के कारण पर का ज्ञान हुआ। उस ज्ञान की पर्याय को स्पर्शता है। आहाहा! भगवान पूर्ण पर्याय को स्पर्शता है। समझ में आया? यह आत्मा पूर्ण पर्याय को स्पर्शे, तब तो परमात्मा व्यक्त हो जाये, पर्याय में। आहाहा!

विविक्त.... नहीं आता विविक्त शय्यासन? आता है न नव वाड़ ब्रह्मचर्य में।.... जहाँ पर स्त्री, पशु, नपुंसक न हो, वहाँ ब्रह्मचारी को रहना। यह पर्याय की बात है। यह कहते हैं कि द्रव्यस्वभाव भगवान परमात्मा केवलज्ञानी अरिहन्तदेव को पर के स्पर्श बिना की दशा हो गयी है। वह दशा हुई कहाँ से? अन्तर में वस्तु भगवान आत्मा शरीर और वाणी के स्पर्श बिना की चीज़ ही वह है। आहाहा! गजब! दृष्टि को उठाकर, राग के सम्बन्धवाली दृष्टि को उठाकर, राग के सम्बन्ध और स्पर्श बिना के स्वभाव की दृष्टि करना। इसका अर्थ हुआ कि परसन्मुख की जो दृष्टि थी, उसे स्वसन्मुख करना। क्योंकि वह स्वयं राग के और शरीर के स्पर्श बिना का है। आहाहा! समझ में आया? दिल्लीवाले हैं भाई? तुम्हारे पास बैठे हैं, वे।

मुमुक्षु : मोरबी के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोरबी? ठीक। मैंने कहा, वह दिल्लीवाले कल आये थे.... वह हिन्दी समझे न, इसलिए।

उसमें आता है न? 'बड़ा बड़ाई बोले नहीं, बड़ा न बोले बोल, हीरा मुख से न कहे लाख हमारो मोल।' आहाहा! क्योंकि यह वस्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ शरीर और राग को, मन को स्पर्शा नहीं। आहाहा! ऐसी विकल्प और वाणी.... यह विकल्प करना, वह उसमें नहीं है। आहाहा! वह ऐसा बोले नहीं कि मैं विकल्प बिना का हूँ, स्पर्श बिना का हूँ। ऐसी बात है। आहाहा! ऐसा जो वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने कहा और ऐसा ही है। वह प्रभु है।

इन्द्रादि के स्वामी;.... प्रभु की व्याख्या की है। है न इसमें? **प्रभु....** वास्तव में इन्द्रादि के स्वामी, उसकी प्रभुता यह व्यवहार से कहा। बाकी तो सभी शक्तियों की

प्रभुता पर्याय में प्रगट हो गयी है। क्योंकि उसमें प्रभुत्व नाम का गुण है। ४७ (शक्तियों) में आता है न? सातवाँ गुण है। प्रभुत्व नाम की शक्ति है, प्रभुत्व नाम का गुण कहो, सत् का सत्त्व ही प्रभु से भरपूर है। आहाहा! अर्थात् कि वह परमेश्वर है। प्रगट दशा परमेश्वर की हुई, उसे इन्द्र आदि नमते हैं, ऐसा कहा। यहाँ तो कहते हैं कि प्रगट दशा हुई भले जिसकी, परन्तु यहाँ तो वस्तु व्यक्तरूप से, द्रव्यरूप से प्रगट है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे यहाँ प्रभु कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा.... ऐसा एक बार यहाँ से बोल कोई ले गया है कहीं। वहाँ तो भगवान आत्मा कहते हैं। अरे! भगवान आत्मा होगा? अरे... भगवान! यहाँ कोई सुनकर ले गया हिन्दुस्तान में। ....वहाँ तो भगवान आत्मा कहते हैं। बापू! भगवान आत्मा नहीं, तब क्या पामर है? आहाहा! सिद्ध की पर्याय की पूर्णता, ऐसी अनन्त पर्याय की पूर्णता तो उसके गुण में पड़ी है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर। आहाहा! त्रिलोकनाथ की वाणी में यह आया है। और ऐसा है, वह आया है। जो इस प्रकार नहीं माने, वह आत्मा मानता नहीं, शास्त्र मानता नहीं, सच्चे देव-गुरु को भी वह मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, कान्तिभाई! वहाँ कहीं सुनने को मिला नहीं लींबडी में या कहीं। आहाहा!

प्रभु अर्थात् इन्द्रादि के स्वामी;.... अथवा जिनवर कहा है न वहाँ? गणधरों के भी वर—प्रधान है। यह जिनवरेन्द्र ऐसा कहा है, द्रव्यसंग्रह। जिनवर—जिन समकिती; उसके वर-प्रधान गणधर; उनके प्रधान जिनवर। जिनवरवृषभ। जिनवरेन्द्र कहो, जिनवरवृषभ कहो। जिनवरेन्द्र-जिनवरेन्द्र। आहाहा! सम्यग्दृष्टि से लेकर जिन कहलाते हैं, गणधर आदि को उनका जिनवर कहा जात है और भगवान अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरेन्द्र-जिनवरेन्द्र। आहाहा! अरे! इसे पामर की पर्यायबुद्धि में ऐसा प्रभु है, यह बात इसे अन्तर में बैठती नहीं। क्योंकि प्रगटरूप से है, वह तो अंश दशा है और अन्दर है, वह तो पूर्ण वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

इन्द्रादि के स्वामी;.... है। इन्द्रादि में फिर गणधर आदि के भी स्वामी प्रभु हैं न परमात्मा! उसमें यह आत्मा सर्वज्ञ पर्याय प्रगटे, उसका यह स्वामी है, ऐसा इसमें गुण

है। प्रभुत्व नाम का गुण है। आहाहा! **अव्यय....** है। छठी गाथा का पहला पद का अन्तिम शब्द। अव्यय है। अर्थात्? प्राप्त हुई दशा से वह नाश हो, ऐसा नहीं है। है? **प्राप्त अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप से च्युत (भ्रष्ट) नहीं होनेवाले;....** आहाहा! प्राप्त। अव्यय है न? व्यय अर्थात् नाश नहीं ऐसा। **प्राप्त अनन्त चतुष्टयमय....** अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, यह पर्याय की बात है। ऐसा अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप। अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप। अनन्त चतुष्टयवाला, ऐसा भी नहीं। परमेश्वर पर्याय में अनन्त चतुष्टयमय स्वरूप है। इसलिए वे अव्यय हैं। ऐसा भगवान आत्मा अनन्त चतुष्टय स्वभाव में से हटता नहीं, ऐसा वह प्रभु है। ऐसा अव्यय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात। कहो, दिलीप! बराबर आया है न ठीक सुनने में। ऐसी बातें निकले। कहाँ गये वृद्ध? कहो, समझ में आया? आहाहा!

भगवान अनन्त चतुष्टय सम्पन्न है। हीन दशा में वह दशा आती नहीं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा को पूर्ण हो गयी, वह वापस पड़ती नहीं, नाश होती नहीं; इसी प्रकार भगवान आत्मा जिसका स्वभाव, उसकी शक्ति को क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। उसके स्वभाव की अनन्तता को क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। उसके स्वभाव के सामर्थ्य को अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है—भाव, इसकी उसे जरूरत है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा यह भगवान अव्यय है।

परमेष्ठी.... है। **परम अर्थात् इन्द्रादि से वन्द्य—ऐसा बड़ा पद,...** परमेष्ठी कहना है न? **उसमें जो रहते हैं,...** परमपद की पर्याय जो है पूर्ण, उसमें वह रहा हुआ है। इसलिए वह इन्द्रादि से भी वन्द्य है। आहाहा! **ऐसा बड़ा पद, उसमें जो रहते हैं,....** पूर्ण बड़ा पद जो इन्द्रादि से भी वन्द्य दशा, ऐसी दशा में वह रहे हुए हैं। यह भगवान भी ऐसी दशावाला है, कहते हैं। आहाहा! उसका स्वभाव ही परमेष्ठी है। परम परमात्मस्वभाव की इष्टता-नाम कभी छोड़ता नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बात भी सुनी नहीं और यह दया पालो और व्रत पालो और अपवास करो.... व्यवहारमार्ग है या नहीं? व्यवहारमार्ग है या नहीं? भगवान दो नय का उपदेश करते हैं या नहीं? ऐसा कहकर.... आहाहा! भगवान का मार्ग एक ही प्रकार का है? अर्थात् क्या?

वीतरागता पूर्ण न प्रगट हो, तब उसे निश्चय के साथ ऐसा कोई विकल्प का व्यवहार होता है। उसका नाम व्यवहार है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु व्यवहार है, उसका जोर देकर व्यवहार करनेयोग्य है और व्यवहार होवे तो निश्चय प्राप्त होता है, ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

परम अर्थात् इन्द्रादि से वन्द्य—ऐसा बड़ा पद, उसमें जो रहते हैं, उस स्थानशील.... देखा! उसमें रहते हैं अर्थात् उस स्थान में पूर्ण पर्याय में रहना, ऐसा जो उसका स्वभाव है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव में स्थिर रहा हुआ है। कभी अपूर्ण पर्याय में वह आया ही नहीं। समझ में आया? स्थानशील। देखा! जैसे सिद्ध भगवान का व्यवहार स्थानशील और वह है। परन्तु निश्चय स्थानशील अपनी पर्याय में निर्मलता में रहना, वह उसका मूल स्थानशील है। आहाहा! लोक के अग्र में भगवान रहते हैं, यह सब व्यवहार की बातें हैं। वे स्वयं अपनी पूर्ण पर्याय में रहना, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा का पूर्ण शक्तियों में बसकर रहना, वही उसका स्वभाव है। अपूर्णरूप से आना, रागरूप होना, वह तो उसमें—स्वभाव में नहीं है। आहाहा! अरे! इसकी वास्तविक स्थिति क्या है? इस तत्त्व का वास्तविक पूर्ण स्वरूप क्या है? उसकी अन्तर में अनुभव में प्रतीति बिना सब बातें समझने जैसी है। आहाहा! उसकी बात की बात नहीं, दूसरी माँडकर करना कि, यह व्यवहार कहा है शास्त्र में। वह सब है वह है, सुन न! व्यवहार कहा, वह सब विषकुम्भ है। विषकुम्भ है। भगवान आत्मा अमृत का घड़ा, वह विषकुम्भ को स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **स्थानशील परमेष्ठी;....**

परात्मा अर्थात् संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा.... संसार की पर्याय से भिन्न होकर पर्याय में उत्कृष्ट आत्मा हुए, वे उत्कृष्ट पर आत्मा—परात्मा कहलाते हैं। वैसे ही भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में न आकर परात्मा-महाआत्मा है, कहते हैं। आहाहा! ऐ.... प्रवीणभाई! इसमें प्रवीण होना पड़ेगा। आहाहा! **इस प्रकार के जो शब्द हैं, वे परमात्मा के वाचक हैं।** वाच्य है, वह वस्तुस्वरूप। वाचक उसके शब्द। वे शब्द उसके वाच्य को स्पर्श नहीं करते और वाच्य जो है, वह शब्दों को करता नहीं। लॉजिक

से तो बात है यह। अरे रे! लोगों को ऐसा होता है। परन्तु यह शास्त्र में क्या कहते हैं? यह सोनगढ़वालों ने ऐसा नया निकाला, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। अरे! प्रभु! तू ऐसा रहने दे, बापू! तुझे न बैठे इसलिए.... यह तो परमात्मा के घर की बात है। तेरा घर ही ऐसा है। समझ में आया? तेरे घर में माल इतना पड़ा है। आहाहा! यह बताना है, बापू! तुझे पर्याय के अंश में महत्ता दिख जाती है, वह भ्रम है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग पर्याय है, उसकी तुझे महिमा दिख जाये, ऐसी वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह परात्मा है। आहाहा! एक समय की पर्याय का सामर्थ्य-शक्तियाँ भगवान पर-भिन्न है। आहाहा! परमात्मा को पर्याय में पर भिन्न हो गया। यहाँ वस्तु में वह पर पर्याय से परात्मा भिन्न है। आहाहा! ऐसी वस्तु की स्थिति ही है, वहाँ उसे मर्यादा में ला डालना, वह वस्तु नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ये सब शब्द परमात्मा के वाच्य हैं और शब्द सब वाचक है।

'परमात्मा' इत्यादि से उन्हें ही दर्शाया है। परमात्मा इत्यादि जो यह सब नाम लिये न। **परमात्मा अर्थात् सर्व प्राणियों में उत्तम आत्मा; ईश्वर अर्थात् इन्द्रादि को असम्भवित—ऐसे अन्तरङ्ग-....** वैभव। और तीर्थंकर को डाला है। **बहिरङ्ग परम ऐश्वर्य से सदा सम्पन्न;....** ऐश्वर्य। **जिन अर्थात् सर्व कर्मों का मूल में से नाश करनेवाले....** आहाहा! यह अपेक्षित कथन है। नाश करता नहीं आत्मा। समझ में आया? ३४ गाथा में नहीं आया? समयसार। राग का परमार्थ से नाशकर्ता भी आत्मा नहीं। आहाहा! स्वभाव में स्थिर होता है (तो) राग उत्पन्न नहीं होता, उसे आत्मा राग का नाश करनेवाला है, ऐसा उपचार से कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? समझाना हो, तब संक्षिप्त शब्दों में ऐसी शैली आती है। वहाँ कहा कि आत्मा राग का नाशकर्ता है, ऐसा कहना, वह भी बराबर नहीं। आहाहा! और यहाँ कहना कि **सर्व कर्मों का मूल में से नाश करनेवाले हैं।** आहाहा!

राग का नाशकर्ता कहना, वह भी उपचार से कथन है। आहाहा! राग का, हों! क्योंकि वस्तुस्थिति अन्तर में रहने से, स्थिर होने से उसे राग की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए उसे राग का नाश करता है, ऐसा उपचार दिया गया है। आहाहा! यह व्यवहार

के कथन हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा! यहाँ थोड़ी-थोड़ी छोटी चीज़ में लोभित हो जाता है, खिंच जाता है, उसे इतनी बड़ी कैसे बैठे ? समझ में आया ? दुनिया महिमा करे, महत्ता दे, अभिनन्दन पत्र दे तो इसे प्रसन्नता हो जाती है कि आहाहा! इन्हें मेरी कद्र करना आयी। उसे इतना आत्मा कैसे बैठे ? भाई! समझ में आया ? ऐसी वस्तु की स्थिति है। आहाहा! ऐसा उसे ज्ञान में और श्रद्धा में ऐसी महिमा इसे बैठनी चाहिए। समझ में आया ? आहाहा! **(इत्यादि परमात्मा के अनन्त नाम हैं)।**

भावार्थ - निर्मल, केवल, शुद्ध, विविक्त, प्रभु, अव्यय, परमेष्ठी, परात्मा, ईश्वर, जिन इत्यादि नाम परमात्मा के वाचक हैं। टीका में डाला है न ? '**परमात्मेश्वरो जिनः**' है न मूल पाठ में ? '**परमात्मेश्वरो जिनः**' ईश्वर स्वयं है। आहाहा! समझ में आया ? भगवान परमेश्वर पर्याय में ईश्वर है। यह (आत्मा) वस्तु स्वरूप से ईश्वर है। आहाहा! करनेयोग्य हो तो यह दृष्टि और यह ज्ञान और पश्चात् स्थिरता। बस! यह है। ऐई! आहाहा! यात्रा कर आये, इसलिए न्याल हो गये हम। सम्मेदशिखर की यात्रा कर आये। ऐई! अभी गया नहीं था ? कहा था तेरे दादा ने कि यह सम्मेदशिखर की यात्रा करने जाता है। यात्रा करने गये थे न अभी ? तुम्हारा दिलीप और.... आहाहा! यह तो कहते हैं कि वह यात्रा का भाव होता है। परन्तु उसे महत्ता (महत्त्व) देने जाये तो तेरी महत्ता बदल जायेगी। आहाहा! ऐसी वीतराग की वाणी और उसका वाच्य भगवान ऐसा! वाणी वाचक है। अरे! ऐसा आत्मा सुना नहीं। पामर होकर इसने प्रभु को जाना नहीं। पामरता में आत्मा की प्रभुता को कुचल डाला। आहाहा!

कहते हैं, **ये नाम, परमात्मा के स्वरूप को बतलाते हैं। उस स्वरूप को पहिचानकर, अपने आत्मा को भी वैसे स्वरूप से चिन्तवन करना, यह परमात्मा होने का उपाय है।** अन्दर-अन्दर ऐसा चिन्तवन करना अर्थात् एकाग्र होना, हों! चिन्तवन अर्थात् विकल्प से चिन्तवन करना, ऐसा नहीं। ऐसा पूर्ण स्वभाव, उसे ज्ञान में-लक्ष्य में लेकर निर्णय करे। भले विकल्प से पहले करे। वह निर्णय सच्चा नहीं है वापस। आहाहा! अन्तर के स्वरूप को स्पर्श कर जो निर्णय करे, वह सच्चा निर्णय है। आहाहा! **उस स्वरूप को पहिचानकर, अपने आत्मा को भी....** है न ? **वैसे स्वरूप से चिन्तवन (एकाग्रता) करना, यह परमात्मा होने का उपाय है।**

आत्मा में शक्तिरूप से स्थित गुणों का.... आत्मा में स्वभाव सामर्थ्यरूप रहे हुए गुणों का **जीव को भान हो; इसलिए भिन्न-भिन्न गुणवाचक नामों से परमात्मा की पहचान करायी गयी है।** समझ में आया? **आत्मा में शक्तिरूप से स्थित गुणों का....** उसमें रहे हैं। शक्ति का अस्तित्व है। आहाहा! वह सत् का सत्त्व का अस्तित्व है। वह आत्मा सत्‌रूप, उसके गुण, उनका सत्त्व, उसके भावस्वभावस्वरूप, उस शक्ति से सम्पन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा को आत्मारूप से जाने, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। और साथ में स्वरूपाचरण भी होता ही है। आहाहा! उसकी दृष्टि करके ऐसा ज्ञान किया, इतना तो वहाँ स्थिर होता है या नहीं? समझ में आया? वे कहते हैं न? चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं होता। एक व्यक्ति कहे कि सिद्ध में चारित्र नहीं होता। कैलाशचन्दजी ने ऐसा लिखा है। पण्डिताईवालों को पण्डिताई का अभिमान छोड़ना मुश्किल पड़ता है।....लिखा, सिद्ध को चारित्र नहीं होता। अरे! सिद्ध को संयम नहीं होता। छह काय और मन और इन्द्रियाँ और.... यह नहीं होते। चारित्र तो इनका गुण है। शक्तिरूप पूरा चारित्रगुण है। कहा न? आहाहा! वह शक्तिरूप चारित्ररूप रहे हुए गुण, ऐसे अनन्त गुण उसमें है। उसकी प्रगट दशा हुई तो पर्याय में चारित्र पूर्ण आया। आहाहा! समझ में आया? **भिन्न-भिन्न गुणवाचक नामों से परमात्मा की पहचान करायी गयी है।**

आत्मा, चैतन्यादि अनन्त गुणों का पिण्ड है। भगवान आत्मा ज्ञाता ज्ञान, दर्शन ऐसा चैतन्य। ऐसी अनन्त शक्तियों का वह पिण्ड है। इन अनन्त शक्तियों का वह लड्डू है-पिण्ड। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह आठ वर्ष के राजकुमार जब आत्मा का अनुभव करके दीक्षित होते होंगे.... आहाहा! धन्य दशा! धन्य काल! धन्य अनुभव! आहाहा! माता! हमें जो अनुभव हुआ भगवान आत्मा का, उसे हम पूर्ण करने सावधान होकर वन में जायेंगे, माँ! आहाहा! हमारा भगवान पूर्ण शक्ति से सम्पन्न पूर्ण भरपूर है। ऐसा हमें अनुभव हुआ है, प्रतीति हुई है। उसका नमूना भी स्वरूपाचरण की स्थिरता में आया है। आहाहा! ऐसे स्वरूप को साधे, वे साधु कहलाते हैं। समझ में आया? आहाहा! आठ वर्ष के बालक। एक

छोटी.... क्या कहलाये ? पिच्छी और एक कमण्डल। आहाहा! हमारा नाथ पूर्ण वस्तु से भरपूर प्रभु है। उसकी पर्याय में यह अपूर्णता कैसे रहे ? उसे हम प्रभुता के गुण को अब हम पर्याय में छलकाये। आहाहा! इसका नाम साधुपना है। भाई! साधुपना कहीं वस्त्र छोड़े और नग्न (हो गये, वह नहीं)। आहाहा!

ऐसी शक्ति से भरपूर परमात्मा हमारी पर्याय में न आवे, दृष्टि और ज्ञान में आया, कहते हैं, परन्तु स्थिरता की पर्याय में न आवे, उसे साधने के लिये, माता! आहाहा! जननी! आहाहा! माता! रोना हो, उतना रो ले। परन्तु कोलकरार करते हैं, नयी माता नहीं बनायेंगे, माँ! आहाहा! यह महिमा भासित हुई और उसे साधने की यह सब दशा है। ऐसी वस्तु हमें प्रतीति में, अनुभव में, ज्ञान में ज्ञात हो गयी है। वह पर्याय में न आवे पूर्णता, तब तक हमें चैन नहीं रहे। चैन नहीं रहे अर्थात् दुःख होगा, ऐसा नहीं। तब तक हमारा प्रयत्न पूर्ण करने के प्रयास में हैं। आहाहा! वह हमारा आचरण है। समझ में आया ? आहाहा! ऐसे सन्त जब नजर में पड़ते हों.... लोगों का भी भाग्य, ऐसे दिखाई दे, हों! राजकुमार हो, स्फटिकमणि जैसे सुन्दर शरीर हों परन्तु शरीर को और मुझे सम्बन्ध ही नहीं है न! समझ में आया ? हमने भगवान आत्मा को सम्बन्धरहित देखा है। माता! उसे पर्याय में पूर्ण सम्बन्ध.... आहाहा! ऐसा आत्मा है। आत्मा के ज्ञान की खबर न हो, आत्मज्ञान न हो। और आत्मा की ऐसी वस्तु है, ऐसी अन्तर ज्ञेय होकर प्रतीति न हो, वहाँ आगे क्या साधन हो ? भाई! समझ में आया ? बात तो यहाँ से शुरु होती है।

कहते हैं कि परमात्मा को गुण अपेक्षा से.... **अनन्त गुणों का पिण्ड है। ये गुण, भगवान को पूर्णरूप से विकसित हो गये हैं;....** प्रगट हुए हैं, **इस कारण इन गुणों की अपेक्षा से वे अनेक नामों से पहिचाने जाते हैं। परमात्मा को गुण अपेक्षा से जितने नाम लागू पड़ते हैं, वे सब नाम इस आत्मा को भी स्वभाव अपेक्षा से लागू पड़ते हैं...** अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता, अनन्त आनन्दता, स्वच्छता, प्रभुता, ये सब नाम आत्मा को लागू पड़ते हैं। **क्योंकि दोनों आत्माएँ, शक्ति अपेक्षा से समान हैं;....** जैसे सर्वज्ञ परमेश्वर पर्याय में पूर्ण हुए, ऐसा ही यह भगवान आत्मा गुण से पूर्ण है। परन्तु

यह प्रतीति और श्रद्धा करे तब। नहीं तो ऐसे अनन्त गुण हैं, वे ख्याल में आये बिना प्रतीति किस प्रकार करे? समझ में आया? आहाहा! स्वसन्मुख होकर जब उसकी शा में यह आत्मा.... यह अनन्त गुण का एकरूप ऐसा आत्मा, (ऐसी) उसकी पर्याय में श्रद्धा में भासित हो, तब वह अनन्त गुणवाला है—ऐसा निश्चित कहलाये। परन्तु वह ऐसी विद्यमान वस्तु को.... 'है', उसे 'हैरूप' से भासित न हो, तब तक उसे 'है' कहाँ है? विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)